



अगम बहै दरियाव: ग्रामीण जीवन और ग्रामीणों के अंतहीन संघर्ष

➤ रमेश कुमार यादव¹

सारांश

‘भारत मूलतः गावों का देश है’ और ‘गाँव में बहुत सुकून और आनंद है’ जैसे आदर्श वाक्य हम होश संभालते ही सुनते आ रहे हैं। पहली उक्ति निहायत सत्य होते हुए भी देश के कर्णधारों (राजनीतिज्ञों, नीति निर्माताओं) ने गाँवों को इस कदर नहीं बनाया कि देश का मूल सुरक्षित और मज़बूत हो सके। गाँवों की अनदेखी होती रही और वे हाशिए पर जाते रहे। दूसरी उक्ति सामान्यतः उन लोगों के मुख से सुनने को मिलती है जिनकी आर्थिक व सामाजिक हैसियत बहुत अच्छी है या औसतन अच्छी है। देश के दो महान व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से इसे समझने का प्रयास करते हैं। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में गाँव ‘अज्ञानता की मांद’ थे, तो महात्मा गाँधी एक-एक गाँव को अलग गणतंत्र मानते हुए इसके के जरिए ही विकास की संभावनाएँ देखते थे। गाँधीजी वर्तमान परिस्थितियों में सुधार की गुंजाइश को मानते हुए गाँवों में भविष्य की संभावनाएँ (एक गणराज्य के रूप में) देख रहे थे तो अम्बेडकर जी गाँवों के वर्तमान स्वरूप (छुआछूत, भेदभाव, ऊँच-नीच, सामंती सोच, आर्थिक अवसरों की कमी, रूढ़िगत समाज इत्यादि) के आधार पर अपना विचार रख रहे थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि गाँवों ने गणराज्य कितना सफल बनाया है तथा वह रूढ़िगत सोच और व्यवहार से खुद को कितना उबार सका है। समय के साथ कुछ बदलाव अवश्य हुए परन्तु वे ग्रामीण आवश्यकता के हिसाब से नाकाफ़ी थे। जिसका परिणाम हुआ पलायन, जो आज भी निर्बाध रूप से जारी है। रोजगार, चिकित्सा, शिक्षा, परिवहन जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए लोग छोटे-बड़े शहरों की तरफ लगातार पलायन कर रहे हैं।

मुख्य शब्द- ग्रामीण परिवेश, किसान, सरकार, पिछड़े, परम्परा, शोषण

1. ‘अगम बहै दरियाव’ एवं शिवमूर्ति-

हिंदी साहित्य में गाँव को केंद्र में रखकर कई रचनाएँ की गई हैं। उदाहरणस्वरूप- सुमित्रानंदन पन्त की

कविता ‘ग्रामश्री’, ज्ञानेन्द्रपति की कहानी ‘गाँव का घर’, प्रेमचंद की कहानी ‘पूस की रात’, प्रेमचंद का उपन्यास ‘गोदान’, श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास ‘राग दरबारी’,

¹ असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल', राही मासूम रज़ा का उपन्यास 'आधा गाँव' इत्यादि। इन रचनाओं में गाँव के विविध रंग चित्रित हुए हैं। आपसी मेल-जोल, समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा, जातिगत संघर्ष, संकीर्ण मानसिकता, सांप्रदायिक समता-विषमता, खेती-किसानी, सेठ-साहूकार-दबंगों का पुलिस प्रशासन से गठजोड़, गरीबों-कमजोरों का शोषण, छल-कपट, साक्षरता की कमी, अन्धविश्वास इत्यादि अनेक लक्षणों को गाँव अपने में समाए हुए है। इनमें से कई चरित्रों के साथ उपर्युक्त प्रत्येक कृतियों में गाँव उभरकर सामने आ जाता है।

'तिरियाचरित्तर' एवं 'कसाईबाड़ा' जैसी कालजयी कहानी और 'त्रिशूल' जैसा समसामयिक उपन्यास लिखने वाले कथाकार शिवमूर्ति का नवीनतम उपन्यास है 'अगम बहै दरियाव'। शिवमूर्ति के इस उपन्यास में गाँव के सभी रंग मिल जाते हैं। यह उपन्यास उत्तर भारतीय ग्रामीण जनजीवन की गाथा को अपने में समेटे हुए है। इस गाथा के केंद्र में किसान, स्त्रियाँ, अगड़े, पिछड़े, दलित, अल्पसंख्यक सब अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ प्रमुखता से मौजूद हैं। जातिगत टोले के हिसाब से गाँव की बस्तियों की बसावट, गाँव के लोगों का आपसी व्यवहार, गाँव के तीज-त्यौहार, गाँव की पंचायत की संरचना और उसकी कार्यप्रणाली, गाँव की राजनीति पर देश की राजनीति और राजनीतिक पार्टियों का असर, देश की अर्थनीति का गाँव के किसान-युवाओं पर असर, पुलिस-प्रशासन द्वारा गाँव की अशिक्षित या कम शिक्षित व कम रसूखदार जनता का शोषण, जातिगत संघर्ष आदि सभी रंग इस उपन्यास में देखे जा सकते हैं। वास्तव में यह एक गाँव का कथानक न होकर समूचे उत्तर भारत की लोकगाथा है।

2. किसानों; एक दुःखद कहानी

भारत के किसानों के दुःख का अंत नहीं है। यह थाना, अदालत, पटवारी, वकील, सेठ-साहूकार, व्यापारी, मिल मालिक सबके बुने हुए जाल में फँसकर छटपटाता रहता है। सरकारों के लिए भी यह सिर्फ वोट बैंक ही है, नहीं तो आजादी के पचहत्तर साल के बाद भी क्या किसानों की स्थिति में बदलाव न हो जाता। उपन्यास की शुरुआत संतोखी के खेत पर गाँव के दबंग छत्रधारी सिंह के कब्जे से शुरू होती है। छत्रधारी ने छल-कपट कर फर्जी कागजात तैयार करके संतोखी के खेत पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया। संतोखी ने अपने खेत पर कब्जा पाने के लिए मुकदमा किया। कोर्ट-कचेहरी-थाने के इतने चक्कर लगते हैं कि अपने ही खेत पर कब्जा पाने में उसे 29 साल से अधिक समय लग गया, वो भी जंगू नामक एक डाकू की कृपा से। इतने दिनों में उसने अपना धन, बल, मानसिक स्वास्थ्य सब कुछ खोया। वहीं जिसने खेत पर जबरदस्ती कब्जा किया वह खेत की उपज भी लेता रहा और पुलिस-प्रशासन की मदद से संतोखी को परेशान भी करता रहा। तभी तो संतोखी गाता हुआ कहता है

“जेकर नोट वही कै शासन

थाना मा बैठे दुस्सासन...”¹

संतोखी हाईकोर्ट से स्टे वेकेशन का आदेश मिलने के बाद भी अपने खेत पर छत्रधारी का कब्जा हटवा नहीं पाते हैं तो वकील उन्हें पुलिस की मदद लेने को कहता है, और यह भी बताता है कि “....असली ताकत तो पुलिस के पास ही होती है और पुलिस हमेशा ताकतवर लोगों के साथ खड़ी होती है।”² पुलिस का यह स्वरूप गरीबों के लिए एक विडम्बना है, त्रासदी है।

किसानी घाटे का सौदा है। अतएव किसान खेती से दूर होता चला जा रहा है। इसलिए किसान अपने बच्चों को पढ़ाने लिखाने पर-अधिक जोर दे रहा है, ताकि बच्चों को किसानी रूपी आफत से दूर रहना पड़े। इसमें मुनाफा तो छोड़िए लागत का निकलना भी मुश्किल हो जाता है। किसान अपनी उपज का मूल्य खुद नहीं तय कर पाते और सरकार समर्थन मूल्य भी लागत को ध्यान में रखकर तय नहीं करती, जिसका नतीजा किसानी में घाटा होना, किसानों पर कर्ज का बोझ बढ़ते जाना है, जिसकी परिणति किसानों की आत्महत्या होती है। पहलवान अपना धान सरकारी क्रय केंद्र पर देने का मन बनाते हैं। वहाँ, कर्मचारियों और आदतियों की मिलीभगत से किसान परेशान किए जाते हैं। पहलवान कहते हैं- “..... एक तो सरकार समर्थन मूल्य इतना कम तय करती है कि किसान की लागत तक नहीं निकलती। फिर आप मनमानी कटौती करके लूटते हैं। सेंटर जब अपनी जेब भरने के लिए दस रूपए कुंटल हमसे लेता है तो फिर पाँचछह किलो की कटौती क्यों करता है।”³

भगवत पांडे ने किसानी करने के लिए लोन पर ट्रैक्टर लिया। उन्होंने सोचा कि बेरोजगारी में बेटा घर की खेती भी करेगा और दूसरों का खेत जोतकर कुछ कमाई भी कर लेगा। लेकिन पैसों की किल्लत घर में लगातार बनी ही रही। जैसे किसान के घर की ज़रूरतें कभी पूरी होती ही नहीं हैं। पांडे कुछ दिन बाद बैंक की किश्त चुकाने में असफल हो जाते हैं। बैंक द्वारा बुलाए जाने पर बैंक मैनेजर से अपना दुखड़ा कहते हुए किसानी, सरकार, और व्यवस्था पर व्यंग्य भी कह जाते हैं- “.....हमारी नज़र में बैंक माने सरकार। चीनी मिल माने भी सरकार। हमारे अनाज की एम.एस.पी. न बढ़ाने वाली सरकार और उस रेट पर खरीद न करने वाली

सरकार। सरकार अपनी लेनदारी लेना तो जानती है पर देनदारी देना नहीं जानती।.....हमें दो साल का गन्ने का बकाया नहीं मिला और आपकी तीन किस्ते रुक गई हैं। हम मिल का कुछ बिगाड़ नहीं सकते, लेकिन आप हमारा ट्रैक्टर नीलाम करा सकते हैं....।”⁴

इस उपन्यास में एक और किसान हैं ‘बोधो’ उर्फ ‘विद्रोही’। संतोखी को छत्रधारी के खिलाफ़ कानून का सहारा लेने की सलाह विद्रोही ही देते हैं। विद्रोही जी गाँव में शोषण के खिलाफ़ लड़ने वाले, सच का साथ देने वाले तथा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण राजनीति से लेकर प्रदेश की राजनीति का अनुभव रखने वाले हैं। इनके पुत्र पहलवान खेती-बाड़ी का काम सँभालते हैं। पहलवान अपने बेटे को इंजीनियरिंग की पढ़ाई कवराने में बहुत आर्थिक तंगी से गुजरते हैं और अपनी बेटी की शादी करने के लिए खेत बेचने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। जैसे ही इस समस्या से उबरने का कोई रास्ता सूझता है, भले ही वह उचित न हो, उन्हें उस पर विचार करने के अलावा जैसे अन्य विकल्प समझ में नहीं आता। इसी कारण पहलवान बहू अपने बेटे की पढ़ाई के दौरान ही उसकी शादी करने का विचार करती हैं- “.....जोगी को तैयार कर लेंगे। जो पैसा और मोटरसाइकिल लाल बाबू से मिलेगी (दहेज में), वही झुबू बाबू को देकर बेटी ब्याह सकते हैं। खेत बिकने से बच जाएगा।”⁵

जिसके पास सिर्फ़ किसानी से ही जीवन-यापन का विकल्प है वह अपने आपको जीवित रखने के लिए संघर्षरत है। किसानों का पाला मिल मलिकों, व्यापारियों, विचौलियों से पड़ा है, वे दिनों-दिन ताकतवर होते जा रहे हैं। उनसे लड़ने के लिए सभी किसानों को अपनी जाति- धर्म और राजनीतिक गुटबाजी के भेद को भुलाकर संगठित होना पड़ेगा और इनसे जूझना पड़ेगा।

3. दलित; जातीय दंश से उबरने की छटपटाहट

प्रत्येक समाज में विभिन्न वर्ग के लोग रहते हैं और कभी कभार उनके बीच संघर्ष भी होता रहता है। संघर्ष-के कारण धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, नस्लीय, जातीय, क्षेत्रीय, भाषाई इत्यादि होते हैं। इन संघर्षों में संख्या बल काफी मायने रखता है अर्थात् जिसकी संख्या अधिक है, वह संघर्ष में जीत की तरफ होता है और सबसे आवश्यक बात यह कि अधिकतर संघर्ष ऐसे हैं जिसमें समय के साथ उनके स्वरूप में, उनके पक्ष विपक्ष में-बदलाव आता रहता है। भारत में जातीय संघर्ष का स्वरूप रूढ़िगत है, जिसके स्वरूप में आज भी कोई खास बदलाव नहीं आया। पक्ष अपने-विपक्ष सदियों से अपने-पाले में खड़े हैं। और आश्चर्य की बात यह है कि जातीय संघर्ष में अल्पसंख्यक जातियाँ बहुसंख्यक कमिरी जातियों पर भारी पड़ती रही हैं। इसलिए जातीय व्यवस्था में शोषण हमेशा तथाकथित निचले सोपान की जातियों का अधिक होता है।

इस उपन्यास में दलित पिछड़ों का संघर्ष कई जगह-देखने को मिलता है। एक बार दलित जाति के लोगों ने महापंचायत करके फैसला लिया कि वे पुरानी मजदूरी पर काम नहीं करेंगे, बड़ी हुई मजदूरी लेंगे। जमींदार पारस सिंह सहित ठाकुर टोले के सभी लोगों ने तय किया कि बड़ी मजदूरी देना ठीक नहीं। उनका तर्क है- “ऐसा नहीं कि हमारे अंदर दया माया नहीं है।-लेकिन मामला ज़िंदा रहने का है। दलितों को हम इस लिए दबाये..... रखने को मजबूर हैं कि वे हमारी छाती पर सवार न हो जाएँ। ज़िंदा रहने भर को ही मजदूरी देना भी उन्हें दबाए रहने का एक दाँव है।”⁶

दलितों से पुरानी मजदूरी पर काम कराने की ज़िद के कारण संघर्ष बढ़ गया। पारस सिंह झूरी को कम मजदूरी

पर काम न करने के कारण मारने पीटने लगते हैं। झूरी-के दोनों बेटे पारस को भी पीटते हैं। इस संघर्ष में पारस सिंह की मृत्यु हो जाती है। बदले में ठाकुर टोले के लोगों ने पूरी दलित बस्ती को आग के हवाले कर झूरी को जलती झोपड़ी में फेंक दिया।

गजाधर एक दलित था जो छत्रधारी सिंह के भट्टे पर बहुत दिनों से मुंशी का काम कर रहा था। छत्रधारी ने धोखे से मुंशी के नाम से ईट फ़र्म खोल ली और कभी टैक्स जमा नहीं किया। छप्पन हज़ार का बकाया होने पर पुलिस ने गजाधर को जेल में डाल दिया। गजाधर बकाया से बचने के लिए कोर्ट का सहारा लेता है। बाद में उस पर चोरी का इल्जाम लगाकर दबंगों द्वारा मारा जाता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। इस घटना का इतना खौफ हुआ कि गजाधर की पत्नी हमेशा के लिए गाँव छोड़ देती हैं। वह बेटे जंगू (जंगबहादुर) और बेटी को लेकर मायके में प्रधान द्वारा दी गई जमीन पर झोपड़ी बनाकर रहती है और मजदूरी कर जीवन-यापन करती है।

जातिवाद और वर्गश्रेष्ठता के ज़हर से स्कूल के अध्यापक और बच्चे तक नहीं बच पाए हैं। जब जंगू को कक्षा मानीटर बनाने की बात मास्टर साहब ने की तो कक्षा के एक सवर्ण छात्र कौशलेन्द्र सहित उसकी गोल के सारे लड़कों को खल गई। “..... उन्हें यह बात बिल्कुल वर्दाशत नहीं कि एक चमार उनका मानीटर बने।”⁷ स्कूल में मास्टर के लोटे को बच्चों ने जानबूझकर जंगू से छुआ दिया ताकि इसे सजा मिले। जंगू लाख कहता रहा कि मेरी कोई गलती नहीं है लेकिन पंडित जी ने उसे पीटा और स्कूल छोड़ने तक को कह दिया। जंगू स्कूल छोड़ देता है। आगे चलकर परिस्थितिबश उससे एक हत्या हो जाती है, वह जेल में बंद हो जाता है। जेल से

छूटने के बाद जंगू डकैत बन जाता है। आशय यह कि भारतीय सामाज के रूढ़िगत ताने बाने ने न जाने-कितनों का जीवन बर्बाद कर दिया। इन्हीं सताएहुए लोगों में से कई बागी बन गए और कुछ डाकू।

दलितों की रहनुमाई करने वाली राजनीतिक पार्टी ने भी दलितों को निराश किया। इसका उदाहरण उपन्यास का एक दलित पात्र 'तूफानी' है। तूफानी सजग है, पढालिखा है-, आगे वह कानून की पढाई करके वकील बन जाता है। दलित राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व के आह्वान पर वह सक्रिय राजनीति में शामिल हो जाता है। पार्टी के लिए काम करना, दलित समाज के बौद्धिक उत्थान के लिए कार्यक्रम करना, अम्बेडकर की मूर्ति लगवाने में आगे रहना, पार्टी की रैली के लिए लोगों को इकट्ठा करना आदि कार्य तूफानी सक्रिय रूप से करता है। जैसा कि राजनीतिक पार्टियोंकी हमेशा एक सी नियति नहीं रहती। किससे और किस विचारधारा से कब बैर भाव बना लें और कब मैत्रीभाव यह एकदम अनिश्चित है। समय बदलता है। दलित पार्टी ने भी विचारधारा से समझौता करके रामवादी पार्टी के साथ मिलकर सरकार बनायी। जिनसे हकमारी की शिकायत थी, उन्हीं के साथ कदमताल करना एक दुर्लभ कार्य था। सरकार अम्बेडकर पार्क में 'पेरियार' की मूर्ति लगाना चाहती है, परन्तु रामवादी पार्टी कह रही है कि रावण लीला करने वाले रामद्रोही की मूर्ति लगी तो पार्टी समर्थन वापस ले लेगी। सवेरे अखबार पढ़ने से तूफानी को पता चला कि सरकार का पेरियार प्रतिमा लगाने का कोई इरादा नहीं है। यह वक्तव्य मुख्यमंत्री की ओर से था। प्रतिमा लगने के उद्देश्य से लखनऊ गए तूफानी का मन खट्टा हो जाता है और उसे कबीर का एक दोहा याद आता है।

'चींटी चाउर लै चली, बीच में मिलि गई दाल।

कह कबीर दोउ ना मिलै, एक ले दूजी डार।'

दलित राजनीति के कर्णधारों ने दलित राजनीति का क्या हथ्र किया, इस मुद्दे पर भी यह उपन्यास दृष्टि डालता है। रामवादी पार्टी की राजनितिक स्थिति में उतार को भांपते हुए अम्बेडकर के मार्ग पर चलते हुए सामाजिक राजनीतिक चेतना की वाहक दलित पार्टी ने-तथाकथित मनुवाद के समर्थकों का सहारा लेने का निश्चय किया। पार्टी अगले साल होने वाले विधान सभा चुनाव के लिए उम्मीदवारों की सूची जारी करती है। उसमें एक तिहाई टिकट ब्राह्मणों को दिया गया है। आरक्षित सीट के लिए भी पैसे वाले को ही टिकट मिलेगा। बाबा साहेब ने जिन प्रतीकों का बहिष्कार किया था वे अब पार्टी को अपनाने पड़ रहे हैं। तूफानी यह सब देखकर हैरान है। पार्टी के उद्देश्य बदल गए, नारे बदल गए। जनता व कार्यकर्ता जिनसे संघर्ष करते थे, उन्हें मन मसोसकर उन्हीं के प्रचार प्रसार में लगना पड़ रहा है।-इस गठबंधन के पहले जो लोग पार्टी के चुनाव निशान और पार्टी की नेता के शारीरिक सौष्ठव में साम्यता देखते -थे वे अब अलग राजनीतिक नारे लगा रहे हैं '*हाथी नहीं गणेश हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश हैं*' पार्टी कार्यकर्ता समझा रहे हैं कि हमें एक ही लीक पर नहीं चलना चाहिए, समय के साथ बदलना चाहिए, बौद्धिक लोगों का उपयोग अपनी पार्टी के लिए भी हो रहा है, इसमें हमें सहयोग करना चाहिए। अब तूफानी को अफ़सोस होता है कि यदि उसने पार्टी का काम न करके वकालत किया होता और पैसा कमाया होता, तो शायद वह भी पार्टी से टिकट ले सकता था। तूफानी की यही चेतना उसकी दुश्मन बन गई। राजनीतिज्ञों को केवल अनुयायी और अंधभक्तरूपी

कार्यकर्ता की जरूरत होती है, न कि चैतन्य या प्रश्नकर्ता की। उसी की पार्टी की सरकार ने तूफानी को पार्टी विरोधी गतिविधियों में शामिल होने के आरोप में पार्टी से निकाल दिया और सरकार ने ड्रग्स के धंधे में शामिल होने का फ़र्जी मुकदमा कर जाँच शुरू करवा दी।

दलितों में सामाजिक-राजनीतिक चेतना तो आई, लेकिन इनके हित को लेकर चलने वाले सामाजिक, राजनीतिक संघटनों ने बहुत निराश किया। इन संघटनों ने दलितों को सामाजिक-आर्थिक रूप से मजबूत करने का बीड़ा उठाया था और काफ़ी हद तक यह जिम्मेदारी निभायी भी लेकिन कालांतर में ये अपने उद्देश्य से भटक गए। सत्ता व धन प्राप्ति इनका मुख्य उद्देश्य हो गया। सत्ता का लोभ और धन प्राप्ति की इच्छा ने विचारों की निष्ठा खो दी।

4. सरकार और सरकारी तंत्र

सरकार और सरकारी तंत्र में जनता पिसती जा रही है। सरकार के लम्बे-चौड़े वादे और भारी भरकम सरकारी महकमे गरीब-कमज़ोर के आँसू नहीं पोंछ पा रहे हैं। इस उपन्यास में सेठ-साहूकार और किसान के बीच संघर्ष में प्रशासन सेठ-साहूकारों का ही साथ देता है। हीरा सेठ के पास यूरिया का गोदाम है। वह किसानों को यूरिया कम देता है और ब्लैक ज्यादा करता है। जब किसान के लड़के इसका विरोध करते हुए जबरदस्ती यूरिया ले लेते हैं तो लूट का इल्जाम लगाकर पुलिस इन सबको जेल के अन्दर कर देती है।

संतोखी अपने खेत को छत्रधारी के कब्जे से छुड़ाने के लिए उनतीस साल तक मुकदमा लड़े। कोर्ट-कचेहरी-लगाते बूढ़े हो गए। इसके बावजूद-थाने का चक्कर लगाते कब्जा नहीं पाए। हर अदालत से जीत जाने के बाद भी

कब्जा नहीं पा सके। अंत में निराश होकर जंगू डाकू से मदद की गुहार लगाई। यह सिद्ध करता है कि भारत में गरीब और कमजोरों के लिए न्याय दूर की कौड़ी है। अधिकतर मुकदमों में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलते रहते हैं, लेकिन उनका निष्कर्ष नहीं निकलता। न्यायापालिका आज भी गरीबों की पहुँच से दूर है।

किसान भगवत पांडे कर्ज न चुका पाने के कारण अपना खेत नीलामी में गवां देते हैं और उसी ग़म में आत्महत्या कर लेते हैं। एक और गरीब, अनपढ़ सूरें को फ़र्जी लोन में फँसाया जाता है, पुलिस उसे पकड़ कर पीटती है। आज भी बैंक कर्मचारियों को लोन और बीमा के टारगेट दिए जाते हैं। बैंक कर्म कभी समझाकर, कभी बहला-फुसलाकर और कभी-कभी धोखे से ग्राहकों से अपना लक्ष्य पूरा करते हैं। ऋण देने वाली यही संस्थाएँ अमीर उद्योगपतियों के हजारों करोड़ रूपए राइट ऑफ कर देती हैं और सरकारें उन्हें गिरफ्तारी तो छोड़िए बचने के रास्ते बताती हैं। हद तो यह है कि ऐसे लोग येन-केन-प्रकारेण फिर से कर्ज पा भी जाते हैं।

5. निष्कर्ष

शिवमूर्ति ने इस उपन्यास के जारिए एक ओर खेती-किसानी के संकट और दलितों-मजदूरों का सामाजिक-आर्थिक संघर्ष दिखाया है, तो दूसरी ओर सेठ-साहूकारों का शासन-सत्ता से गठजोड़ व पुलिस-प्रशासन के अन्यायपूर्ण, शोषणकारी रवैये की भी पोल खोली है। हालाँकि विषम परिस्थितियों से जूझते हुए कई पात्र समाज को रास्ता भी दिखाते हैं कि अन्याय के खिलाफ़ हथियार डालने के बजाय संघर्ष करना भी एक रास्ता है। यही विश्वास लोगों में जिजीविषा पैदा करता है। इस उपन्यास में ग्रामीण जन-जीवन के विविध रंग भी

उभरकर सामने आए हैं। जैसे- मेलों में लोगों का शामिल होना, पहलवानी में गाँव के लोगों की रूचि होना, महिलाओं का तीज-त्यौहार में बड़-चढ़कर भाग लेना, शादी-विवाह जैसे रस्मों में नाते-रिश्ते-पड़ोसियों का शामिल होना, विभिन्न अवसरों पर गीत-गवनई गाना इत्यादि। गाँव का यही लोक पक्ष ग्रामीणों को विपरीत परिस्थितियों में भी उत्साहपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है। यह दर्शाता है कि यदि गाँव में बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध हो जाएँ तो लोग बहुत खुशहाल जीवन जिएँगे। आज देश के जन सामान्य को आवश्यकता है नेताओं को अपने मुद्दे (खेती, किसानों, शिक्षा, रोजगार, परिवहन) पर राजनीति करने के लिए मजबूर करना न कि नेताओं द्वारा तय किए गए मुद्दे (जाति, धर्म, क्षेत्र) पर लहालोट हो जाना। यदि ऐसा होता है तब

शायद रास्ते शहर से गाँव की तरफ भी आयें। अन्यथा अभी तो एकतरफा रास्ता है जो सिर्फ गाँव से शहर की ओर ही जा रहा है।

सन्दर्भ सूची

1. शिवमूर्ति, अगम बहै दरियाव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2023, पृष्ठ सं. 377
2. वही, पृष्ठ संख्या 377
3. वही, पृष्ठ संख्या पृष्ठ सं. 414
4. वही, पृष्ठ संख्या पृष्ठ सं. 431
5. वही, पृष्ठ संख्या सं. 482
6. वही, पृष्ठ संख्या पृष्ठ सं. 50
7. वही, पृष्ठ संख्या पृष्ठ सं. 140
8. वही, पृष्ठ संख्या पृष्ठ सं. 38